मङ्गलम्

लौकिक कार्य हो या धार्मिक सभी में भाव की प्रधानता आचार्यों ने कही है। भाव विहीन क्रिया निष्प्राण तथा निरर्थक कही गई है। क्रिया यदि शरीर है तो भाव उसकी आत्मा है। वेद–पुराण इसका पार न पा सके और कविजन इसके गान के लिये शब्द न पा सके। श्रद्धा जिसका प्राण है, विनय जिसकी बुद्धि है, विवेक जिसका मन है, प्रेम जिसका हृदय है, बहुमान जिसका अहंकार है, सेवा जिसकी इन्द्रियाँ हैं और आनन्द जिसका शरीर है, ऐसी "भक्ति" ही उस "भाव" का सांगोपांग व्यक्तित्व है। पूजा इसका बाह्य रुप है और प्रेम आभ्यन्तर। मातृ – प्रेम – वत् स्वतः स्फुरित होने वाले इस भाव में कृत्रिमता को अवकाश कहां।

काव्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, वाद्यकला, नृत्यकला इत्यादि सकल कलायें उसकी क्षुद्र अभिव्यक्तियें मात्र हैं। मिलन के आभाव में सकल कला विकला है। भक्त का हृदय इन सबसे कैसे सन्तुष्ट हो सकता है। आभ्यन्तर कला ही सकला है। पूजा – भक्ति – विषयक इस छोटे से सकलन के रुप में अपना छोटा सा प्रेम प्रेमीजनों के मध्य वितरित करके सम्भवतः आपका यह भक्त आपकी उस महती कृपा को प्राप्त कर सके। जिसके प्रसाद से इसके हृदय में जगद् पाविका आपकी वह अचिन्त्य कला स्फुरित हो सके जिसके हस्तगत हो जाने पर कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता।

ॐ

(परम पूज्य वर्णी जी की लेखनी से)

१. जीवनी

'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष' तथा 'समणसुत्त' जैसी अमर कृतियों के रचयिता श्रद्धेय श्री जिनेन्द्रजी वर्णी से आज कौन परिचित नहीं है। अत्यन्त क्षीण-काय में स्थित उनकी अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगी तथा दृढ़-संकल्पी आत्मा स्व-पर-हितार्थ अध्यात्म-मार्ग पर बराबर आगे बढ़ती रही है और बढ़ती रहेगी, जबतक कि वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेती।

आपका जन्म ज्येष्ठ कृ० २ सं० १९७८ में पानीपत (पंजाब) में हुआ। आप जैन, वैदिक, बौद्ध तथा अन्य जैनेतर वाङ्मय के सुप्रसिद्ध विद्वान् पानीपत निवासी स्वर्गीय श्री जयभगवान जी जैन एडवोकेट के ज्येष्ठ सुपुत्र हैं। पैतृक-धन के रूप में यही सम्पत्ति आपको अपने पिता से प्राप्त हुई। अध्यात्म-क्षेत्र में आपका प्रवेश बिना किसी बाह्य प्रेरणाके स्वभाविक रूप से हो गया। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात', बाल्य-काल में ही शान्ति-प्राप्ति की एक टीस हृदय में लिये कुछ विरक्त से रहा करते थे, फलतः वैवाहिक बन्धनों से मुक्त रहे। इलैक्ट्रिक तथा रेडियो-विज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने पर आपने व्यापारिक क्षेत्र में प्रवेश किया और पानीपत में ही इण्डियन ट्रेडर्ज नामक एक छोटी सी फर्म की स्थापना की, जो आपकी प्रतिभा के फलस्वरूप दो तीन वर्षों में ही वृद्धि को प्राप्त होकर कलकत्ता एम० ई० एस० की एक बड़ी ठेकेदारी संस्थाके रूप में परिवर्तित हो गई। इतना होनेपर भी आपके चित्त में धन तथा व्यापार के प्रति कोई आकर्षण उतपन्न नहीं हुआ। आप सब कुछ करते थे, परन्तु बिल्कुल निष्काम भाव से केवल अपने छोटे भाईयों के लिये। 'मेरे छोटे भाई जल्दी से जल्दी अपने पाँव पर खड़े हो जायें,' बस एक यह भावना थी और उसे अपना कर्त्तव्य समझ कर आप सब कुछ कर रहे थे। फर्म में हिस्सा देने के लिये भाईयों ने बहुत आग्रह किया, परन्तु इतना मात्र उत्तर देकर आप

पानीपत लौट आये कि "प्रभु-कृपा से मेरा कर्त्तव्य पूरा हुआ, इस कर्त्तव्य की पूर्ति द्वारा मेरा पितृ-यज्ञ पूरा हुआ, इससे बड़ी बात मेरे लिये और क्या हो सकती है, इसी में मुझे सन्तोष है"।

इस व्यापारको छोड़कर अब आप शान्ति की खोजका व्यापार करने लगे। प्रारम्भमें ही इस रहस्य का कुछ-कुछ स्पर्श होने लगा और आठ वर्ष के अल्प-काल में उसे हस्तगत करने में सफल हो गए। सन् १९५० में आपने स्वतन्त्र स्वाध्याय प्रारम्भ की, सन् १९५४-५५ में उसका मञ्जन करने के लिये सोनगढ़ गए, ज्ञान के साथ-साथ अनुभव तथा वैराग्य की तीव्र बृद्धि होती गई, यहाँतक कि सन् १९५७ में अणुव्रत धारण करके गृह-त्यागी हो गए। आप घर की बजाय मन्दिरमें रहने लगे और भोजन-चर्या के विषय में सरलता धारण कर ली, जो बुलाता उसी के यहाँ जाकर खा लेते। धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा तथा अपने भीतर डूबकर प्रत्येक विषयको सक्षात् करने का दृढ़-संकल्प इत्यादि कुछ दैवी गुणोंके कारण इस मार्गपर आपकी प्रगति बराबर बढ़ती गई, और भाद्र-पद शु० ३ वि० सं० २०१८ सन् १९६१ को आपने ईसरी में क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। शारीरिक स्वास्थ अनुकूल न होते हुए भी आपने कभी बाह्या-चार की उपेक्षा नहीं की। अन्तरंग-साधना के साथ बाह्य-साधना की इतनी सुन्दर मैत्री बहुत कम स्थानों पर देखने को मिलती है। समय-समय पर किया गया आपका उत्तरोत्तर वृद्धिगत परिग्रह-परिमाण, जिह्वा-इन्द्रिय सम्बन्धी नियन्त्रण तथा पोष माघ की कड़कड़ाती सर्दियों में पतली सी धोती तथा सूती चादर में रहना आपकी आचार-दृढ़ता तथा कष्ट-सहिष्णुता के साक्षी हैं।

मौन-वृति तथा एकान्त-प्रियता आपकी जन्मजात प्रकृतियां हैं। विद्यार्थी जीवन में भी आप प्रायः बहुत कम बोलते थे और घर तथा स्कूल के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं जाते थे। यही कारण है कि आपके मित्रों की सख्या कभी एक या दो से अधिक नहीं हो सकी।

शरीर सदा दुर्बल तथा अस्वस्थ रहा, बचपन से ही प्रायः टाइफाइड के

आक्रमण होते रहे, पिता से श्वास रोग प्राप्त हुआ, और सन् १९३८ में जब आप केवल १६ वर्षके थे आपको क्षय रोगने आ दबाया। तदपि न जाने कितनी दृढ़ है आपकी आयु डोर कि भयंकर से भयंकर झटकों से भी भग्न नहीं हुई, सम्भवत: इसलिये कि यह जर्जर शरीर आपको आत्म-कल्याणके लिये मिला है, किसी लौकिक प्रयोजन से नहीं।

यद्यपि बचपनमें धर्म-कर्मका कोई विशेष परिज्ञान आपको नहीं था, प्रमाद-वश मन्दिर भी नहीं जाते थे और न कभी शास्त्रादि पढ़ते या, सुनते थे, तदपि जन्म से ही आपका धार्मिक संस्कार इतना सुदृढ़ था कि क्षय-रोग से ग्रस्त हो जानेपर जब डाक्टरोंने आपसे मांस तथा अण्डे का प्रयोग करने के लिये आग्रह किया तो आप ने स्पष्ट जवाब दे दिया। कॉड लिवर आयल तथा लिवर ऐक्सट्रैक्ट का इञ्जेक्शन भी लेना स्वीकार नहीं किया, यहाँ तक कि इस भयसे कि 'कदाचित दवाई में कुछ मिलाकर न पिला दें' अस्पताल की बनी औषधि का भी त्याग कर दिया।

इस मार्ग की रुचि आपको कैसे जागृत हुई, यह एक विचित्र घटना है। सन् १९४९ का पर्यूषण पर्व था, मूसलाधार पानी पड़ रहा था, घर के सभी व्यक्ति मन्दिर चले गए थे और आप घरपर अकेले थे। न जाने क्यों सहसा आपका हृदय रो उठा, बहुत देर तक पड़े रोते रहे, जब चित्त घबड़ा गया तो उठकर मन्दिर चले गए। वर्षामें सब कपड़े भींग गए, पॉव गन्दे हो गए, तदपि ऐसेके ऐसे जाकर शास्त्र-सभामें बैठ गए। आपके पूज्य पिता श्री जयभगवान्जी प्रवचन कर रहे थे, किसी प्रसंगमें उनके मुखसे 'ब्रह्मास्मि' शब्द निकला और यह शब्द ही आपके लिये गुरु-मन्त्र बन गया। अगले दिनसे ही शास्त्र-स्वाध्याय प्रारम्भ कर दी और धीरे-धीरे उसमें आपका चित्त इतना रम गया कि बिना किसी संकल्पके सहज रूपसे 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' जैसी अपूर्व कृतिका उदभ्व हो गया।

इस महान कृति का परिचय तो आगे दिया जायेगा, यहाँ इतना बता देना

इष्ट है कि इसका उदभ्व एक चमत्कारिक घटना है, अन्यथा कोई भी एक व्यक्ति अकेला ऐसा महान कार्य कर सके यह सम्भव प्रतीत नहीं होता। आपने स्वयं भी कभी कोश बनानेका संकल्प किया हो, ऐसा नहीं है। स्वाध्याय करते हुए सहज रूपसे नोट किया करते थे। धीरे-धीरे उनका संग्रह इतना बढ़ गया कि वह जंगल प्रतीत होने लगा। इस संग्रह को अधिक विशद तथा उपयोगी बनानेके लिये दोबारा पुनः सकल वाङ्मयका अध्ययन किया और इसी प्रकार तृतीय बार पुनः किया। जो-जो पढ़ते गए उसे अनुभव की कसौटी पर कस कसकर समझते भी गए। फलतः ज्ञान विशद होता गया और नोटों का संग्रह अत्यन्त विशाल हो गया। लगभग एक मन कागज एकत्रित हो गए। उपयोगी बनाने के लिये 'इन्हें ठीकसे संजो दिया जाय', ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई और केवल ५-६ वर्ष में कोश का प्रारुप तैयार हो गया, जिसे प्रकाशनार्थ पुनः ठीकसे लिखने में दो वर्ष और लगे।

आपका हृदय अन्तंशान्ति व प्रेमसे-ओतप्रोत साम्यता तथा माधुर्यका आवास है, बौद्धिक जगतकी अपेक्षा हार्दिक जगतको अधिक सत्य समझते हैं और मुखसे कहने तथा कानों से सुनने की अपेक्षा अपने जीवन में उतारना तथा दुसरों की आंखोंमें पढ़ना आपको अधिक महत्वपूर्ण लगता है। अपनी तथा दूसरोंकी बातों को वैज्ञानिक कसौटीपर कसना आपका स्वभाव है, इसलिये किसीभी प्रकारकी साम्प्रदायिक रूढ़ि आपको स्पर्श नहीं कर सकी। निजकी स्वतन्त्र अनुभूतियोंपर आधारित होने के कारण आपकी साधना समाज में प्रसिद्ध अन्य साधकों की अपेक्षा कुछ विलक्षण है। बाह्याचार को आप साधना का अत्यावश्यक अंग समझते हैं, और इसलिये बड़े से बड़े त्याग व तप करते हैं, परन्तु इन सब में आपकी दृष्टि अन्तर्मल शोधन अर्थात् इन्द्रिय-वासनाओंके तथा कषायोंके निग्रह पर रहती है, लोक-दिखावे पर नहीं। इसलिये जो कुछ करते हैं गुप्त रीति से करते हैं और वह सब सुयुक्ति युक्त होता है अन्धा नहीं। यदि कोई बाह्य क्रिया आपको अपने भीतर में विकल्पों की और बाहर में विविध कृत्रिमताओं

तथा जटिलताओंकी हेतु होती प्रतित होती है तो तुरन्त उसके पक्षको त्यागकर उसमें सुधार कर लेते हैं। 'सत्य करना, सत्य देखना, सत्य विचारना, और सत्य के लिये सब कुछ सह लेना' है आपका जीवनादर्श, यही कारण है कि आप सदा सामाजिक संसर्गों से दूर किसी शान्त तथा एकान्त स्थान में मौन-युक्त रहना अधिक पसंद करते हैं। स्वयं अपने भीतर विचारना, करना और परीक्षा कर कर के उसमें यथावकाश परिवर्तन करते रहना आपके हृदय-प्रकर्षका सूत्र है।

मेरे पूज्य पिता पं० रूप चन्दजी गार्गीय से आपको कभी कोई मौखिक उपदेश प्राप्त हुआ हो, ऐसा मैं नहीं जानता, तदपि न जाने क्यों आपके मनपर उनका इतना प्रबल प्रभाव है कि आप उनको अपना अध्यात्म-गुरु तथा परमोपकारी आश्रय स्वीकार करते हैं। पूछनेपर आपने केवल इतना ही बताया कि "जो उपदेश मुझे उनकी आंखोंसे मिलता है, वह किसी भी शास्त्र से नहीं मिलता। उनके जीवनमें मुझे 'गृहवासी भी त्यागी' का आदर्श दिखाई देता है।" इसी प्रकार पूज्य क्षु० श्री गणेश प्रसादजी वर्णीसे भी आपको कभी कोई मौखिक उपदेश प्राप्त नहीं हुआ और न ही कभी उनका प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तथापि उनकी आंखों में आपने वह कुछ पढ़ा जो सम्भवत: बड़े-बड़े ज्ञानियों के प्रवचनों में भी आप पढ़ न सके।

पूज्य वर्णीजी के हृदयस्पर्शी अनुभवों से लाभान्वित होने के लिये सन् १९५८ में आपने कुछ समय ईसरी आश्रम में बिताया, परन्तु स्वास्थ्य ने वहाँ आपको अधिक काल रहने की आज्ञा नहीं दी। वहाँ से वापस लौटने पर मुजफ्फरनगर की जैन समाजने आपका सप्रेम आह्वाहन किया। सन् १९५९में वहाँ तीन महीने तक आपके अनुभवपूर्ण धारावाही प्रवचन चलते रहे, जिन्होंने आगे चलकर 'शान्तिपथ-प्रदर्शन' नामक एक संगोपांग ग्रन्थ का रूप धारण कर लिया। समाज में आपकी मांग बढ़ जानी स्वभाविक थी। फलत: अजमेर, टूण्डला, इन्दौर, सहारनपुर, नसीराबाद एवं अन्य कई स्थानोंपर और भी जाना पड़ा।

इन्दौर में दिये गए प्रवचनोंका संग्रह पीछे 'नय दर्पण' नामक स्याद्वाद न्याय विषयक ग्रन्थके रूपमें प्रसिद्ध हुआ और सहारनपुरमें दिए गए कुछ प्रवचन शान्तिपथ-प्रदर्शनके द्वितीय संस्करणमें सम्मिलित कर दिये गए।

यद्यपि समाज में आपकी प्रतिष्ठा बराबर बढ़ रही थी, परन्तु आपका सत्यान्वेषी चित्त भीतर ही भीतर किसी दूसरी दिशा की ओर जा रहा था। उसे यह जानते देर नहीं लगी कि जिस दिशामें वह चला जा रहा है वह सत्य नहीं असत्य है, इस जन रञ्जना के व्यापारने उसे पथ-भ्रष्ट कर दिया है, और यदि शीघ्र न सम्भला तो उसकी भी वही गति हो जानी निश्चित है जो कि अन्य साधकों की आज प्रायः हो रही है। अतः आपने इस सकल प्रपञ्च को छोड़कर एकान्तवास तथा मौन-वृत्ति धारण कर ली, प्रवचन देना तथा इस उद्देश्य से स्थान-स्थान भ्रमण करना छोड़ दिया और रोहतक जाकर नगरसे बाहर श्री नन्दलालजी की बगीचीमें अकेले रहने लगे। त्यागी जनोंमें इस प्रकार की वृत्ति आजकल सर्वथा अप्रसिद्ध है इसलिये समाजमें आपके प्रति सन्देहात्मक दृष्टि उठना स्वाभाविक था। यह सन्देह धीरे-धीरे क्षोभका रूप धारण करने लगा, परन्तु आपके सत्यान्वेशी दृढ़ संकल्प को डिगा सके इतनी सामर्थ्य उसमें नहीं थी।

प्रकृति आपकी इस विजय को देख न सकी और १९७० की सर्दियोंमें श्वास रोगने अपनी पूरी शक्ति के साथ आपपर आक्रमण कर दिया। दशा शोचनीय हो गई और आप समाधि-मरण धारण करने का विचार करने लगे। परन्तु जब डाक्टरों तथा वैद्यों ने यह विश्वास दिलाया कि 'यह सर्व विपत्ति वास्तवमें पानीकी कमी के कारणसे है' और यदि आप शामको एकबार पानी लेना स्वीकार कर लें तो सहज दूर हो सकती है। रोहतक समाज ने भी आपसे अपना विचार बदल देनेका आग्रह किया और सुझाया कि 'देह-त्याग करने से सत्यपथपर जो प्रगति वर्तमान में चल रही है वह रुक जायेगी और साथ ही जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश के प्रकाशन का जो काम अधूरा पड़ा है वह अधूरा ही

रह जायेगा।" आदर्श की रक्षा के समक्ष पहली बात का तो आपकी दृष्टि में कोई विशेष मूल्य नहीं था, परन्तु दूसरी बात ने अवश्य आपको चिन्तामें डाल दिया। अपनी उपास्य सरस्वती माता की सेवा अधूरी छोड़ कर प्रयाण कर जाने की बात आपके हृदय ने स्वीकार नहीं की, और माँ के चरणों में नत हो अपना विचार छोड़ दिया। अब उनके सामने दूसरी समस्या थी; शरीर की रक्षा के अर्थ शाम को पानी लेना क्षुल्लक-वेश में सम्भव नहीं था। यद्यपि जानते थे कि इसका त्याग एक अतिभयंकर सामाजिक अपराध है, परन्तु माँ की सेवाके समक्ष इस अभिशापके साथ टक्कर लेनेके लिये भी आप सीना तान कर खड़े हो गए। कुछ प्रेमीजनोंने मोहवश आपको कुछ दिन छिपकर रहनेकी सलाह दी, परन्तु यह आध्यात्मिक चोरी आपके सत्यनिष्ठ हृदयने स्वीकार नहीं की। सत्य की रक्षा के लिये निन्दा की परवाह न करते हुए आपने उस वेशका त्याग कर दिया और साथही सारे पत्रोंमें इस बातकी सूचना प्रकाशित करा दी। इस क्रिया का प्रभाव जो होना था वह हुआ। प्रतिष्ठा का स्थान निन्दाने ले लिया परन्तु आपकी शान्त मुस्कान एक क्षणको भी भंग नहीं हुई।

यह अनहोना कार्य करके आपने समाज में रहना उचित नहीं समझा और कलकत्ता चले गए। यह सुनते ही बनारस समाजके प्रतिष्ठित श्रावक श्री जय-कृष्णजी अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी पर आपको बनारस ले आये। वहाँ आने पर बनारस की सारी समाजने आपको प्रेम पूर्वक हृदय से लगा लिया। वहाँ ठहरकर आपने कोश-प्रकाशन का कार्य अपनी देख रेख में पूरा कराया, और सन् १९७२ में बा० सुरेन्द्रनाथजी के आमन्त्रण पर आप ईसरी चले गए।

उद्देश्य की पूर्ति हो जाने पर देह त्यागवाली बात पुनः हृदय में चुटकियाँ भरने लगी, परन्तु इसी समय पुनः एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यका दायित्व सर पर आ गया। पूज्य विनोबाजीकी प्रेरणा हुई कि बौद्धोंके 'धम्मपद' की भांति अथवा हिन्दुओं के 'श्रीमद्भगवद्गीता' की भांति कोई विश्वमान्य जैन-ग्रन्थ तैयार किया जाय परन्तु शर्त यह कि चारों जैन सम्प्रदायों के प्रसिद्ध आचार्य

विद्वान तथा श्रेष्ठीजन संगीति के रूप में किसी एक स्थान पर एकत्रित होकर सर्व-सम्मति से इसे प्रमाण स्वीकार करें। काम कठिन ही नहीं असम्भव जैसा था, क्योंकि परस्पर विरोधी सम्प्रदायों के प्रतिष्ठित गुरुओं का एक स्थान पर एकत्रित होना कल्पनातीत था, और सबका निर्विरोध रूप से किसी एक व्यक्ति की कृति को स्वीकार कर लेना उससे भी अधिक असम्भव था। परन्तु एक तो भगवान वीर की २५००वीं निर्वाण जयन्ती का पावनयोग और दूसरे वर्णीजो की प्रेम समता तथा नम्रता पूर्ण अनाग्रही वृति, इन दोनों बातों ने असम्भव को सम्भव बना दिया। ३० नवम्बर सन् १९७४ को देहली में सगीति हुई। सभी प्रधानाचार्यों के अतिरिक्त दूर दूर से आकर लगभग २५०-३०० विद्वान तथा श्रेष्ठीजन एकत्रित हुए। थोड़ा विचार विनिमय के पश्चात् सबने प्रेम-पूर्वक, वर्णीजी के द्वारा संकलित तथा सम्पादित 'समण सुत्त' नामक ग्रन्थ को मान्यता प्रदान कर दी, जो सन् १९७५ में प्रकाशित होकर जनता के हाथ में आया। प्रथम संस्करण तुरंत समाप्त हो गया और इसी बर्ष पुनः ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण निकलवाना पड़ा। कई भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका

यह कार्य अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि पूज्य गणेश प्रसादजी वर्णी की जन्म शताब्दी आ गई। समाज का आग्रह हुआ कि इस अवसर पर पूज्य श्री की स्मृति में कोई एक आदर्श ग्रन्थ प्रकाश में आना चाहिये। ६-७ महिने के अल्प समय में ग्रन्थ तैयार हो गया। सन् १९५७ में 'वर्णी दर्शन' नाम से प्रकशित ५०० पृष्ठवाले इस ग्रन्थ में पूज्य गणेश प्रसादजी वर्णीकी पूरी जीवनी और उनके सकल उपदेशों का सार निवद्ध है। विशेषता यह कि पूरे ग्रन्थ में कहीं एक भी शव्द आपने अपना नहीं जोड़ा है। सारा ग्रन्थ वर्णीजी के अपने शब्दों में संकलित किया गया है। अभी ठीक प्रकार से सांस भी लेने नहीं पाये थे कि 'शान्तिपथ प्रदर्शन' की बढ़ती मांग को देखकर बा० सुरेन्द्रनाथजी ने इस ग्रन्थ का नये सिरे से सस्कार करके तीसरी बार छपवा देने के लिये आपसे आग्रह किया। स्वास्थ का ध्यान न करते हुए निर्विश्राम परिश्रम द्वारा १९७६

में यह कार्य भी पूरा हो गया।

अभी यह काम अच्छी तरह पूरा भी नहीं हो पाया था कि पुनः रोग ने आपके शरीरपर आक्रमण कर दिया। आपको लगा कि सरस्वती माता ही इस बहाने मुझे रोहतकवाले संकल्प की याद दिला रही है। इसलिये अवसर को सर्वथा अनुकूल समझते हुए किसीसे कुछ कहे बिना मौन धारण करके अनशन प्रारम्भ कर दिया। समाजमें खलबली पड़ जाना स्वाभाविक था। पं० कैलाश जी, पं० दरबारी लालजी कोठिया, कटनीवाले पं० जगन्मोहन लालजी आदि विद्वानों को साथ लेकर बा० सुरेन्द्रनाथजी ने अपनी आशंका प्रगट करते हुए आपको समझाने का प्रयत्न किया, सकल समाज ने भी अपना हार्दिक दुःख व्यक्त करते हुए आप पर लौट जाने के लिये दबाव दिया, परन्तु इतने पर भी जब आपने अपना मौन भंग नहीं किया तो इधर उधर आदमी दौड़ाये गए। कोल्हापुर से पूज्य मुनिवर श्रीसमन्त भद्रजीका और पवनारसे पूज्य बिनोबाजी का लिखित आदेश प्राप्त करके आपके समक्ष रख दिया गया। इस प्रकार बाध्य होकर आपको पुनः नत होना पड़ा। आपका यह अनशन ४० दिन तक चला परन्तु शरीर बिगड़ने के बजाय बराबर सुधरता गया, यह एक आश्चर्य की बात है।

ईसरी में रहकर विविक्त-देश-सेवित्व, मौन तथा ज्ञान ध्यान की जो आभ्यन्तर साधना आपने की उसके कारण आपका वैराग्य इतना बढ़ गया कि वर्णी शताब्दीके अवसरपर समाजका अत्यधिक आग्रह होनेपरभी आपने स्टेजपर आना स्वीकार नहीं किया। इसके अतिरिक्त अपनी जन-मान्य कृतियोंपर अपना नामतक देनेकी आज्ञा आपने प्रकाशकों को नहीं दी। 'समण-सुत्त' तथा 'वर्णी-दर्शन' जैसे महत्वपूर्ण तथा अनुपम ग्रन्थों पर आपका नाम कहीं दृष्टिगत नहीं होता। जैनेन्द्र-सिद्धान्तकोश में आपका चित्र टंकित करने के लिये भारतीय ज्ञानपीठने जब आपसे अपना फोटो भेजनेकी प्रार्थनाकी तो फोटो भेजनेके बजाय आपने उनको ऐसा करनेसे रोक दिया। इससे पहले भी इसी प्रकारकी एकघटना

हो चुकी थी । सन् १९७२ में बनारसवाले श्री जयकृष्णजीने आपको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करनेकी बात जब आपसे कही तो आपने उनको मना कर दिया ।

आपकी इस निःस्पृहता से प्रभावित होकर भारतीय ज्ञानपीठ की समिति ने आपको अभिनन्दन-पत्र भेंट करनेका निश्चय किया, परन्तु यह कार्य कैसे किया जाय यह एक समस्या थी । इस प्रयोजन के अर्थ जब आपके पास ईसरी आमन्त्रण भेजा गया तो आपने यह उत्तर देकर बात को टाल दिया कि वाङ्मय की सेवा के अर्थ वे आधीरात सरके बल आने को तैयार हैं, परन्तु इस प्रयोजन के अर्थ आने के लिये क्षमा चाहते हैं । 'समणसुत्तं' विषयक संगीति में सम्मिलित होनेके लिये जब आपको देहली आना पड़ा तब इस अवसरसे लाभ उठाकर समिति के मत्री श्री लक्ष्मीचन्दजी ने बिना आपको बताये सकल आयोजन कर लिया और समाज में निमन्त्रण पत्र भी वितरण करा दिये । सब कुछ कर लेनेके उपरान्त वे आपके पास पहुंचे और कहा कि अब हमारा मान आपके हाथ है । इसप्रकार यह आयोजन स्वीकार करलेनेके लिये आपको बाध्य होना पड़ा । पूज्य उपाध्याय श्री विद्यानन्दजी और पूज्य मुनि नथमलजी के साथ विद्वानों तथा श्रावकों की विशाल सभा में दानवीर श्री साहू शान्ति प्रसादजीने बड़े प्रेम तथा सम्मान के साथ आपको अभिनन्दन पत्र भेंट किया।

सम्प्रदायवाद तथा रूढ़िवादसे आप सदा दूर रहे हैं । अपनी सर्व कृतियों में आपने परमार्थ पथके इन दोनों महाशत्रुओं की कड़ी भर्त्सना की है । आपका कहना है कि तत्त्वलोकके वासीको ब्राह्मण शुद्र अथवा जैन अजैन का भेद कैसे दिखाई दे सकता है । इसी रस में मग्न उनके मुख से अनेकों बार दो शब्द सुनने को मिले हैं कि "मैं न श्वेताम्बर हूं न दिगम्बर, न जैन न अजैन और न हिन्दु न मुसलमान अथवा मैं सब कुछ हूं" । लोकेषणा-पूर्ण जनरञ्जना के सामाजिक क्षेत्र से हटकर आप पिछले कई वर्षों से ज्ञान ध्यान की अभ्यन्तर साधना में रत हैं । न आपको दिखावे से कोई प्रयोजन है, और न रूढ़ियों का स्पर्श, केवल समतापूर्ण विशाल प्रेम ही आपके जीवन का आदर्श है ।

बढ़ती हुई मांग ने जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश के प्रथम संस्करण को समाप्त कर द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने के लिये बाध्य कर दिया। प्रथम संस्करण में जो कमी रह गई थी उसको .दूर करने के लिये आपसे प्रार्थना की गई। अस्वस्थ रहते हुये भी आपने सहज भाव से उसे स्वीकार कर लिया। चारों खण्डों के शोधन के साथ-साथ पांचवें खण्ड जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश शब्दानुक्रमणिका को लिखकर कोश सम्पूर्ण करने में लगभग एक वर्ष का समय लग गया संशोधित प्रथम खण्ड शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा हैं।

लगभग तीन वर्ष से विभिन्न स्थानों से समाज के श्रद्धालुगण आपकी अमृत वाणी का पान करने के लिये इतने उत्सुक रहते थे कि अपने स्थान पर ले जाने के बाद छोड़ने का नाम नहीं लेते थे।

न केवल जैन समाज अपितु अजैन समाज भी आपसे अति प्रभावित थी। भोपाल जैन समाज आपके अमृतमयी वचनों से अत्यधिक प्रभावित थी। बनारस तो आपका विशिष्ट साधना स्थल बन गया। भाई जयकृष्णजी की माताजी आपकी धर्म माता के नाम से सुविख्यात हैं।

वाराणसी में रहते हुये ही अप्रैल सन् १९८१ में महावीरजयन्ती के शुभ अवसर पर वैशाली प्राकृत शोध संस्थान की ओर से आपका अभिनन्दन किया गया। जिसमें एक ताम्र-पत्र, ढ़ाई हजार रुपये, साहित्य व चादर आदि भेंट स्वरुप अर्पित किये गये। नकद रुपया लेने से आपने अस्वीकार कर दिया जो बाद में समण सुत्त' के प्रकाशन के लिये सर्व सेवासंघ को भेज दिया गया।

आपका स्वास्थ्य ठीक न रहने परभी आप अपने लक्ष्य पर जिस दृढ़ता से बढ़ रहे हैं उसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। सन् १९८० में

आप मुक्तागिरि आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी के दर्शनार्थ गये। वहाँ महराज श्री की विद्वता व उनकी वीतराग मुद्रा से अत्याधिक प्रभावित होकर उनके चरणों में अपना जीवन अर्पित कर दिया। स्वास्थ्य साथ न देने के कारण आप वहां अधिक समय न ठहर सके और वर्धा सन्त विनोबाजी के पास होते हुये पुनः वाराणसी आ गये।

आप नवम्बर १९८२ में पुनः आचार्य श्री के पास नैनागिरि सिद्धक्षेत्र पर गये और सल्लेखना व्रत लेने का आग्रह किया। विहार के कारण तथा समय अनुकूल न होने के कारण आचार्य श्री ने सागर वर्णी भवन में आयुर्वेदिक चिकित्सा के लिये तीन महीने ठहरने का आदेश दिया। इसी बीच आचार्य श्री सम्मेदशिखर वन्दना कर ईसरी शान्ति निकेतन उदासीन आश्रममें संघ सहित आ विराजे और आपको ईसरी आने के लिये कहा। फरवरी के अन्त में आप आचार्य श्री के पास ईसरी पहुंचे। स्वास्थ्य लाभ न होने पर तथा साधना में बाधा देखते हुये आपने पुनः आचार्य श्री से सल्लेखना व्रत के लिये आग्रह किया। समय को अनुकूल देखते हुये आचार्य श्री ने १२–४–८३ को आपको सल्लेखना व्रत में निष्ठ कर दिया।

अन्न दूध घी आदि का त्याग करते हुये निरन्तर आप अपनी काय को कृश करते जा रहे हैं। २१ अप्रैल को आचार्य श्री से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। शरीर को कृश करते हुये तथा निरन्तर उपवास तथा अल्प मात्रा में लोकी का जल लेते हुये भी आप समता में पूर्ण निष्ठ हैं। आपका मुख मंडल सूर्य के समान देदीप्यमान है तथा आप अधिकाधिक आत्माभिमुख हो रहे हैं। भगवान से प्रार्थना है कि आप पूर्ण समाधि में निष्ठ होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करें।

सुरेश कुमार जैन गार्गीय
पानीपत

२. उद्‌गार

समय-समय पर विद्वानों तथा मनीषियों ने आपके प्रति जो अपने उद्‌गार व्यक्त किये हैं, उनमें से कुछ का उल्लेख करता हूँ :—

(१) पूज्य श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी के अनुभवपूर्ण तथा आडम्बरहीन सरल ज्ञान से लाभान्वित होने के लिये जब आदरणीय श्री जिनेन्द्रजी सन् १९५८ में यहां (ईसरी) पधारे उसी समय मेरी उनसे प्रथम भेंट हुई। खद्दर की सफेद धोती-कुर्त्ते में लिपटी हुई उनकी आडम्बर-शून्य सीधी-सादी मूर्ति ने चित्त को बलात् अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

आप गत एक वर्ष से (सन् १९७२ से) आश्रम में ही मौन-साधना में अपना समय यापन कर रहे हैं। शरीरसे अत्यन्त कृश होकर भी आप ऐसे दृढ़-संकल्पी हैं कि जिस कार्यको अनेकों विद्वान् मिलकर युगों में पूर्ण कर सके उसे आप एकाकी ही अल्प समय में सुन्दर तथा आकर्षित ढंगसे पूर्ण करने के लिये समर्थ हो जाते हैं। आप जिन-वाणी के गहनतम विषयों को सरल शब्दोंमें बोधिगम्य बनाने तथा विलक्षण पद्धतिसे शिष्य-जनों को हृदयंगम कराने की अद्‌भुत प्रतिभासे सम्पन्न हैं, साथही जन-साधारणको वक्तृत्व कला के द्वारा मुग्ध करने की योग्यता रखते हैं। श्री 'जैनेन्द्र-सिद्धान्त कोश' आदि महान ग्रन्थोंका एकाकी सम्पादन कर आपने स्वयंकी दैवी शक्ति का ऐसा परिचय दिया है कि 'वर्णी-दर्शन' जैसे ग्रन्थ का सम्पादन कर देना आपके लिये बाल-चेष्टा के समान प्रतीत होता है।

ब्र० बा० सुरेन्द्रनाथ
अधिष्ठाता 'शान्ति निकेतन', ईसरी

(२) सारा संसार ही बहिर्दृष्टा है और बहिर्जगत में उलझा हुआ है। क्षुल्लकजी बहिर-स्थितियों का खरा-खोटा मूल्यांकन करते हुए अन्दर की ओर बढ़ते हैं। इसलिये उन्होंने सैद्धान्तिक परिभाषाओं को नये रंग-ढंग में ला रखा

है जो बिल्कुल स्वाभाविक है।

डॉ० कामता प्रसाद

(३) यह वास्तव में सुखद आश्चर्य की बात है कि जो कार्य अनेक विद्वान वर्षों तक लगकर सम्पन्न कर पाते उसे (जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश को) एक ही साधक ने ७ वर्षों की अनवरत् तन्मयता के फलस्वरूप अकेले सम्पन्न किया है। भारतीय संस्कृति और साहित्य, विशेषकर जैन-सिद्धान्त, धर्म, दर्शन और संस्कृति के प्रत्येक अध्येता, प्रेमी एवं प्रशंसक व्यक्ति के लिये यह एक विशेष कृतज्ञता का विषय है कि श्रद्धेय क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी ने ऐसी बहुमूल्य और अद्भुत निधि उन्हें प्रदान की।

भारतीय ज्ञानपीठ
४५-४७ कनॉट प्लेस, नई देहली १

(४) परमात्मस्वरूप प्रिय वर्णीजी के प्रति :—

आपने 'जैनेन्द्र-सिद्धान्त-कोश' लिखने का जो महान परिश्रम किया है उसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है। यह जो उपकार जैन-समाज के ऊपर आपने किया है इससे आपने अपना नाम तथा यश अजरामर किया है। ऐसा महान पवित्र कार्य जिसने किया है, ऐसे 'महात्माओं को प्रत्यक्ष मिलकर उनका सत्कार करने की मेरी तथा सब आश्रमवासियों की भावना और इच्छा है।' आपको दीर्घायु एवं आरोग्य की कामना करते हुए 'आपके द्वारा भविष्य में जिन वाणी की अखण्ड सेवा होती रहे' यही परमात्मा से प्रार्थना है।

पूज्य प्रवर १०८ आ० समन्तभद्रजी
बाहुबली-कुम्भोज

(५) पूज्य श्रीगुरुजीने अपनी सरल व मधुर लेखन-शैलीसे इस (कर्म सिद्धान्त नामक पुस्तक) को सुबोध बना दिया है। मन चाहता है कि उस लेखनी को ही चूम लूँ। जिन श्रीजी की चरण-कृपासे मुझे अल्प-वय में ही इस अमृत की प्राप्ति हुई, जिसे पीकर मैं अमर हो जाऊँगी, उन प्रातः स्मरणीय गुरुजी का हस्त मेरे सरपर सदा बना रहे।

कुमारी मनोरमा जैन, रोहतक

(६) जिनेन्द्र वर्णीजी का उल्लेख किये बिना रहा नहीं जाता। बाबाकी प्रेरणा उन्हें स्पर्श कर गई और वे पल-पल इस ('समणसुत्तं' की रचना) कार्यमें जुट गये। कृश और अस्वस्थ काया में भी सजग एवं सशक्त आत्मा के प्रकाश में आपने यह दायित्व हँसते-हँसते निभाया। वे नहीं चाहते कि उनका नाम कहीं टंकित किया जाय, लेकिन जिसकी सुगन्धि भीतर से फूट रही है, फैल रही है, उसे कौन रोक सकता है।

कृष्णराज मेहता
संचालक सर्व सेवा संघ

३. अभिनन्दन

आध्यात्मिक सन्त, प्रबुद्धचेता विद्वद्वर,
१०५ क्षुल्लक श्री जिनेन्द्र वर्णीजी महाराज के कर-कमलों में
समर्पित

卐 अभिनन्दन-पत्र 卐

अध्यात्म रसिक !

भगवान् सुपार्श्व तथा पार्श्वनाथ की जन्म-भूमि इस वाराणसी नगरी में हम आपका अभिनन्दन करते हुए हार्दिक प्रमोद का अनुभव करते हैं। स्वास्थ्य की अनुकूलता न होते हुए भी आपने हमारे अनुरोध को स्वीकार कर वाराणसी में चातुर्मास करने की कृपा की और हमें अपने आध्यत्मिक उपदेशों का पान कराया, इसके लिए हम आपके अत्यन्त उपकृत हैं। आपके सरस, सरल और मनो-मुग्धकारी उपदेशामृत का पान करने के लिए यहाँ जैन अजैन सभी जिस उत्साह के साथ आते रहे, उससे आपकी अध्यात्म-रसिकता का स्पष्ट परिचय मिलता है ।

प्रबुद्धचेता !

प्राचीन आचार्यों के दिव्य ज्ञान को आपने प्रबुद्ध दृष्टि से ग्रहण ही नहीं किया, साधना द्वारा अपने जीवन में उतारा है। सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों से दूर आपकी दृष्टि और हृदय अनेकान्त के सिद्धान्त की तरह ही अत्यन्त विशाल हैं।

विद्वद्वर !

आपके उपदेश ही आपकी विद्वता के सजीव प्रमाण है। आप द्वारा रचित 'शान्तिपथ प्रदर्शन' तथा 'नय-दर्पण' का अध्येता आपके वैदुष्यसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। लगभग चार हजार पृष्ठों में लिखित 'जैनेन्द्र सिद्धान्त

कोश' तो आपकी विद्वत्ता का कीर्तिमान स्तम्भ ही है। जो कार्य अनेक विद्वान लगकर कई वर्षों में भी सम्पन्न नहीं कर पाते, उसे आपने अकेले ही सात वर्षों के अनवरत् कठोर परिश्रम द्वारा सम्पन्न कर दिया। जब ये विशाल-काय ग्रन्थ प्रकाशित होकर विद्वद् समाज के समक्ष आयेगा तो निश्चय ही भारतीय वाङ्मय के लिए एक विशेष उपलब्धि मानी जायेगी, तथा भारतीय संस्कृति और साहित्य विशेषकर जैन-सिद्धान्त, धर्म, दर्शन और संस्कृति का प्रत्येक अध्येता, प्रेमी और प्रशंसक आपके प्रति कृतज्ञता से भर उठेगा, कि आपने ऐसी अद्भूत और बहुमूल्य निधि उन्हें प्रदान की।

स्मरणीय !

हम काशी वासियों के मन पर जो अमिट छाप पड़ी है, उसे कोई मिटा नहीं सकता। आपका दुर्बल तन और विराट मन, कोमल हृदय और कठोर साधना, अगाध विद्वता और अतिशय सरलता हमें हमेशा आपका स्मरण दिलाते रहेगें। आप जहाँ भी रहें स्वस्थ रहें, आपकी साधना अनवरत चलती रहे तथा समाज आपके अमृतोपदेश से उपकृत होता रहे, ऐसी कामना है।

हम हैं आपके गुणानुरागी
दि० जैन समाज
वाराणसी

वाराणसी
दिनांक १६ अक्टूबर १६६८

श्रद्धेय ब्रह्मचारी श्री जिनेन्द्र वर्णीजी की सेवा में

अभिनन्दन-पत्र

सरल-परिणामी साधुमना, आदरास्पद श्री वर्णीजी !

किसी भी प्रकार के अभिनन्दन-आयोजन के प्रति अनिच्छा होते हुए भी आपने हमारे इस समारोहमें पधारनेकी कृपा की, इसकेलिए भारतीय-ज्ञानपीठ की ओर से हम आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि हमारी इस कृतज्ञ भावना से जैन समाज और सांस्कृतिक जगत के सभी सुधीजन हार्दिक रूप से सम्बद्ध हैं।

गुणों के आगार, प्रतिभा के आधार !

सहज संस्कारशीलता, कुशाग्रबुद्धि, असीम मनोबल, कर्मठता, ततस संयम-साधना, आगमों के अथाह सागर की अवगाहना द्वारा अक्षय ज्ञान-मुक्ताओं का अन्वेषण, तत्त्वज्ञान की गम्भीर उपलब्धि का सरल प्रतिपादन, कलात्मक रुचि, हित-मित प्रिय वाणी, एकान्त-मौन साधना आदि अनेकानेक गुणों से आपके भव्य व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है।

ज्ञान के पावन दीपको साधना के स्नेहसे प्रज्वलित रखनेवाले साधक !

आपकी जिस उपलब्धि को माध्यम बनाकर ज्ञानपीठ आपके इस अभिनन्दन द्वारा अपने को गौरवान्वित कर रही है वह महान कृति 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' ज्ञान की साधना के चरम उत्कर्ष का प्रतीक है। लगभग ७ वर्षों तक धर्म, दर्शन पुराण, इतिहास, भूगोल खगोल विज्ञान और आचार-शास्त्र सम्बन्धी शत-शत ग्रन्थोंका परायण करके आपने जैन संस्कृतिके सारको दर्पणकी भांति रुपायित

कर दिया है। एक साधना-सम्पन्न संस्थान अनेक विद्वानों के सहयोग से सम्भवतया पांच-सात वर्षों में जिस कार्य को सम्पन्न कर पाता, उस विश्वकोश जैसे अनुपम ग्रन्थ को आपने अकेले ही पूरा करके साहित्य-जगत को चमत्कृत कर दिया है। ६००० शब्दों के अन्तर्गत २१००० विषयों के सांगोपांग ज्ञानको आपने शीर्षकों, उपशीर्षकों, मानचित्रों और सारणियों द्वारा स्पष्ट करने की विधि को अपनाकर ज्ञान-कोश की रचना में नया मानदण्ड स्थापित किया है।

इस चमत्कारका सबसे अधिक मार्मिक पक्ष यह है कि युवावस्था में ही क्षय रोग से आक्रान्त होने के कारण चार ऑपरेशनों की शृंखला में आपका एक फेफड़ा बन्द कर दिया गया था। अतः आप एक ही फेफड़े से श्वास-निश्वास की क्रिया साधते हैं।

अद्भुत दृष्टि सम्पन्नता और अथक परिश्रम द्वारा आपने भगवान् महावीर के पच्चीस सौवें परिनिर्वाण महोत्सवके उपलक्ष्य में जैन आगमोंसे जिस 'जिण धम्मं' (समण सुत्तं) संकलन का प्रारूप तैयार किया है उससे भारतका धार्मिक जगत सदा उपकृत रहेगा। यह आपकी नवीनतम उपलब्धि है।

आपकी इन कृतियों के कारण जैन ज्ञानके साधक और विद्वद्समाज आपके चिरऋणी रहेंगे। इस समारोहमें उपस्थित विद्वान इस भावनाके प्रतीक हैं।

आपके मनीषी पिता श्री स्वर्गीय बाबू जयभगवान जी वकील और धर्म-परायण पितृतुल्य श्री रूपचन्दजी गार्गीय तथा परम सन्त 'श्रद्धेय गणेश प्रसाद जी वर्णी' का हम इस अवसर पर पुण्यस्मरण करते हैं, जिनकी छत्रछाया में आपके संस्कार पल्लवित हुये और जिनकी कृपा से आपका ज्ञान और आपका संयम समृद्ध हुआ। श्री जयभगवान् जी वकील उदार दृष्टि-सम्पन्न, समाज-सुधारक और ज्ञान-गुणसम्पन्न थे। श्रद्धेय गणेश प्रसाद जी वर्णी के पुण्य-प्रयत्नों के कारण आज समाज में ज्ञान की ज्योति फैली हुई है। ज्ञान के साथ तप, साधना और त्याग का मार्ग उन्होंने प्रदीप्त किया है।

स्वयं इस अभिनन्दन को मुनि श्री विद्यानन्दजी के सान्निध्य ने एवं विद्वज्जनों की उपस्थिति ने अभिनन्दित किया है, यह हमारा सौभाग्य है।

महामनस्वी वर्णीजी !

हम कृतज्ञ भाव से आपका अभिनन्दन करतेहुए कामना करते हैं कि आपका दीर्घ जीवन ज्ञान-गरिमा से सदा पल्लवित पुष्पित रहे और हम उसके अक्षय फलों का अवदान प्राप्त करते रहें। समाज का आदर और उसकी आस्था आपकेप्रति उसी प्रकार उत्कर्ष पर रहे जिस प्रकार आपके गुरुवर्यपर थी।

हमारा प्रणाम निवेदित है।

कृतज्ञ
रमा शान्तिप्रसाद जैन
भारतीय ज्ञानपीठ

दिल्ली
१ दिसम्बर १९७४

४. रचनायें

मनोमौन के साथ-साथ सकल वृत्तियें शान्त हो जाने के कारण यद्यपि आजकल आपकी लेखन-वृत्ति शान्त हो गई है, तदपि लेखों तथा पुस्तकों के रूप में आपने आजतक जो तथा जितना कुछ भी दिया है उसके लिये समाज सदा आपकी ऋणी रहेगी। सभी कृतियें गहनतम अनुभूतियों से भरी पड़ी हैं। किसी में भी कोई बात कहीं से उधार ली गई नहीं है, सभी आपके स्वतन्त्र हृदय-प्रवाह की द्योतक हैं, तदपि किसी में भी कहीं आगम-विरोध के लक्षण दिखाई नहीं देते। सभी बिना किसी संकल्प के सहज रूप में उदित हुई हैं और सबका अपना-अपना पृथक इतिहास है जिनमें से कुछ का उल्लेख पहले किया जा चुका है। सभी कृतियें इन स्थानों से प्राप्त हो सकती हैं—

(१) श्री जिनेन्द्र वर्णी ग्रन्थमाला, ५८/४ जैन स्ट्रीट पानीपत।

(२) शान्ति निकेतन, पो० ईसरी बाजार जि० गिरिडीह, बिहार।

(३) विश्व जैन मिशन, (केन्द्र) जैन स्ट्रीट, पानीपत।

(४) मूलचन्द किशनदास कापड़िया, गान्धी चौक, सूरत।

शान्तिपथ-प्रदर्शन (१६६०) :—

सन् १९५९ में दिये गये मुजफ्फरनगर के आध्यात्मिक प्रवचनों का संग्रह है, जिसमें जैन दर्शन तथा जैन धर्म का सांगोपांग विवेचन आ गया है। प्रथम तथा द्वितीय संस्करण 'विश्व जैन मिशन, पानीपत केन्द्र' से प्रकाशित हुए थे। अब सन् १९७६ में तृतीय संस्करण 'शान्ति निकेतन आश्रम, ईसरी से प्रकाशित हुआ है। चतुर्थ संस्करण श्री जिनेन्द्र वर्णी ग्रन्थमाला पानीपत से १९८२ में प्रकाशित हुआ है। मूल्य २५)कपड़ाबाउन्ड २८) ~~२५ प्रतिशत छूट दी जायगी~~। विद्वद् समाज ने मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा की है। यथा—

'शान्ति पथ-प्रदर्शन' जीवनको धर्म-तत्वके नामपर किसी एकान्तिक व्याख्या की ओर नहीं खींचता है, अपितु तत्वका जीवनके साथ मेल साधनेमें योग देता है। पारिभाषिक भाषा का जीवनानुभव से मेल बैठाकर रचनाकार ने ग्रन्थको पन्थगत से अधिक जीवनगत बना दिया है। अन्यान्य मतवादों के साथ जैनमत के संगम को यह ग्रन्थ सुगम कर देता है।

साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार, देहली

नय-दर्पण (१६६८) :—

सन् १६६२ में दिये गये इन्दौरके न्याय-विषयक प्रवचनोंका संग्रह है, जिसमें वस्तु-स्वरूप, अनेकान्त, प्रमाण, नय, निक्षेप, सप्तभंगी और स्याद्वाद् जैसे अति जटिल तथा गम्भीर विषयों का अत्यन्त सरल भाषा में सांगोपांग प्रतिपादन किया गया है। स्थल-स्थल पर यथावकाश सर्वानुभूत सरल दृष्टान्त दे-देकर विषय को यथा सम्भव सुगम तथा सुबोध बनाने में कोई कसर उठा नहीं रखी है। बीच-बीच में प्रसंगवश अध्यात्म रस के छीटें भी दिये गये हैं। डिमाई साइज के ७७२ पृष्ठ, सुन्दर क्लॉथ बाइण्डिग, शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है।

वर्णीदर्शन (१६७४) :—

पूज्य गणेश प्रसादजी वर्णी की सौवीं जन्म जयन्ती के अवसर पर 'शान्ति निकेतन आश्रम ईसरी' की ओर से प्रकाशित हुआ है। इस संक्षिप्त से ग्रन्थ में वर्णीजी ने पूज्य श्रीकी जीवनी को आदि लेकर उनका सकल साहित्य संजोकर रख दिया है, तथा एक भी महत्वपूर्ण बात छूटने नहीं पाई है। इतने पर भी विशेषता यह कि इसमें एक शब्द भी आपने अपनी ओर से नहीं लिखा है। सकल सामग्री पूज्य श्री के अपने शब्दों में निबद्ध है। समाप्त हो गई है।

समणसुत्तं (१६७४) :—

श्रीमद्भगवद्गीता तथा बाइबल की भाँति सकल जैन सम्प्रदायों के द्वारा सम्मत जैन धर्मका प्रथम ग्रन्थ है। राष्ट्रीय सन्त बिनोबाजी की प्रेरणा से

उद्‌गत तथा सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। डिमाई साइज के २७६ पृष्ठ, जैकेट कवर-युक्त सुन्दर वाइण्डिग, मूल्य २०)।

सन्त विनोबा के शब्दों में—

मेरे जीवन में मुझे अनेक समाधान प्राप्त हुए हैं। उनमें आखिरी, अन्तिम समाधान जो शायद सर्वोत्तम समाधान है, इसी साल प्राप्त हुआ। मैंने कई दफा जैनों से प्रार्थना की थी कि जैसे वैदिक धर्म का सार गीता में सात सौ श्लोकों में मिल गया है, बौद्धों का धम्मपद में मिल गया है, जिसके कारण ढाई हजार साल के बाद भी बुद्ध का धर्म लोगों को मालुम होता है, वैसा जैनों का होना चाहिये। मै बार बार उनको कहता रहा कि आप सब लोग, मुनिजन इकट्ठा होकर चर्चा करो और जैनों का एक उत्तम, सर्वमान्य धर्म-सार पेश करो। आखिर वर्णीजी नामका एक 'बेवकूफ' निकला और बाबाकी बात उसको जँच गई।

उन्होंने 'जैनधर्म-सार' नामकी एक किताब प्रकाशित की। उसपर चर्चा करने के लिये बाबाके आग्रह से एक संगीति (**conference**)बैठी, जिसमें मुनि, आचार्य और दूसरे विद्वान-श्रावक मिलकर लगभग तीन सौ लोग इकट्ठे हुए। बार बार चर्चा करके फिर उसका नाम भी बदला, रूप भी बदला। आखिर सर्वानुमति से 'संमणसुत्तं' बना, जिसमें ७५६ गाथायें है। एक बहुत बड़ा कार्य हुआ जो हजार पन्द्रह सौ साल में हुआ नहीं था।

सन्त विनोबा भावे

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश (१६७०) :—

सकल दिगम्बर जैन वाङ्मयका सुसंयोजित संग्रह है। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ है। ४ खण्डोंमें विभक्त डबल साइज के २३२५ पृष्ठ, जैकेट कवर युक्त सुन्दर क्लाथ बाइंडिग, मूल्य पूरे सैट का २१०), छूट काटकर १५०)। द्वितीय सस्करण संशोधित होकर, पंचम खण्ड शब्दानुक्रमणिका (**Index**)